वन्दनीय गुरु

–डॉ. भावना आचार्य

सहाचार्य संस्कृत

यद्वत्सहसन्नकिरणः प्रकाशको निचिततिमिरमग्नस्य।

तद्वद् गुरुरत्र भवेदज्ञानं – ध्वान्त – पतितस्य।।[1]

– जैसे सूर्य प्रगाढ़ अन्धकार में स्थित पदार्थो को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार गुरु अज्ञान के अंधकार में भटकते हुए जीवों को ज्ञान की ज्योति प्रदान करता है।

भारतीय परम्परा में गुरु की महिमा का बखान करते हुए कहा गया है कि वह ऐसे रत्नशिल्पी की तरह होता है, जो खान से निकले अनगढ़ पाषाणखण्ड रूपी छात्र में अन्तर्निहित भाव को पहचानकर उसे उचित संस्कार प्रक्रिया द्वारा निखारकर बहुमूल्य नगीना बना देता है।

सर्वेषामेव लोकानां यथा सूर्यः प्रकाशकः।

गुरुः प्रकाशकस्तद्विच्छष्याणां बुद्धिदानतः।।[2]

–जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार गुरु शिष्यों को उत्तम बुद्धि देकर उनके अन्तर्जगत् को प्रकाशपूर्ण बनाते हैं।

इसीलिए कहा भी गया है –

न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः।3

–बिना गुरु की सेवा में गए ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। गुरु हमारे मिथ्या बोध को नष्ट कर देता है, हमें शास्त्रों के सच्चे अर्थ का बोध करा देता है, सुगति और कुगति के मार्गों तथा पुण्य और पाप का भेद प्रकट कर देता है, कर्तव्य और अकर्तव्य का भेद समझा देता है। उसके बिना और कोई भी हमें संसार–गागर से पार नहीं कर सकता।

इस संसार में उत्पन्न हुए पुरुष के सदा तीन गुरु होते हैं – आचार्य, पिता व माता। पिता पुरुष के शरीर को उत्पन्न करता है इसीलिए गुरु है और आचार्य उसे ज्ञान देता है, इसलिए वह गुरु कहलाता है।[4]

''गुरु'' शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की गई है –

गुकारस्त्वन्धकारः स्यात् रेफस्तस्य निवर्तकः।

अज्ञाननिवर्तकत्वात् गुरुरित्यभिधीयते।।[5]

– अर्थात् ''गु'' नाम है अन्धकार का, अज्ञान का और ''रु'' कहते हैं हटाने वाले को यानी जो अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करके ज्ञान का प्रकाश फैलाए, उसे गुरु कहते है। यह शब्द – परमगुरु

का वाचक है। धर्म, ज्ञान, भक्ति का उपदेश करने के कारण, आत्मज्ञान का उपदेश देने के कारण, ज्ञान–वारि से शिष्य के हृदय क्षेत्र का सींचने के कारण तथा शिष्य के अज्ञान को दूरकर उसे सत्पथ पर प्रवृत्त एवं परिचालित करने के कारण ही ऐसे महिमामय व्यक्तित्व को गुरु कहा जाता हैं।

प्रेरकः सूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा।

शिक्षको बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः।।[6]

–प्रेरणा देने वाला, सूचना देने वाला, बताने वाला, पद प्रदर्शित करने वाला, शिक्षा देने वाला तथा बोध उत्पन्न करने वाला होता है – गुरु।

शिक्षक, आचार्य, उपाध्याय और अध्यापक शब्दों की अपेक्षा लोक व्यवहार में पढ़ाने वाले व्यक्ति के लिए ''गुरु'' शब्द का प्रयोग अधिक प्रचलित रहा।

योगशास्त्र में गुरु की परिभाषा देते हुए कहा गया है –

महाव्रतधरा धीरा भैक्षमात्रोपजीविनः।

सामायिक धर्मोपदेशका गुरवो मताः।।[7]

–महाव्रतधारी, धैयवान्, शुद्ध भिक्षा से जीने वाले, संयम में स्थिर एवं धर्म का उपदेश देने वाले महात्मा गुरु माने गए हैं।

वस्तुतः तंत्रों के अनुसार गुरु के पद को सर्वोच्च मानकर दो भेद बताए गए हैं – दीक्षागुरु और शिक्षागुरु । साधना–व्यापार में प्रथम दीक्षा गुरु तत्पश्चात् शिक्षागुरु होते है।[8] तन्त्र के अनुसार गुरु आचार्य एवं देशिक नाम से कहे जाते हैं। स्वयं आचरण के द्वारा शिष्य के आचार को प्रतिष्ठित करते हैं और शास्त्रार्थ का निर्णय कर सकते हैं वे आचार्य कहे जाते हैं। आचार–परायण शिष्य को स्वयं शिक्षा देने वाला ''आचार्य'' कह जाता है।[9] देशिक गुरु शब्द निर्माण देवता (देवरूपीधारी) के ''दे'', शिष्य (पद अनुग्रहकारी) के ''शि'' तथा करुणामयी मूर्ति के 'क'' – इन तीन अक्षरों से होता है। महाभारत के अनुसार उपदेश देने वाले को ''देशिक'' कहा गया है –

''धर्माणां देशिकः साक्षात् स भविष्यति धर्मभाक्।[10]

स्मृतियों में चार प्रकार के शिक्षक माने गए हैं – कुलपति, आचार्य, उपाध्याय और गुरु। जो ब्रह्मर्षि विद्वान् दस सहस्त्र मुनियों को अन्न–वस्त्र आदि देकर पढ़ाता था, वह ''कुलपति'', जो अपने छात्रों को यज्ञ करने की विधि तथा उपनिषद् के साथ वेद पढ़ाता था, वह ''आचार्य'', जो विद्वान मंत्र और वेदांग पढ़ाता था, वह ''उपाध्याय'' तथा जो विद्वान् अपने छात्रों को भोजन देकर वेद–वेदांग पढ़ाता था, वह ''गुरु'' कहलाता था।[11] जिज्ञासु शिष्य अपनी इष्ट–सिद्धि के लिए गुरु की शरण में जाता था और गुरु उसके अज्ञान का निवारण करता था।

संत–वाणियों में गुरु की महिमा भरी पड़ी है। एक सिद्ध संत का कथन है कि गुरु तीन प्रकार के होते हैं – (1) पत्थर (2) लक्कड़ और (3) फक्कड़ । जो स्वयं डूबे और शिष्य को भी साथ लेता

जाये, वह पत्थर गुरु है। जिसके मंत्र और उपदेश का सहारा लेकर शिष्य अपनी श्रद्धा–साधना के बल से पार हो सकता है, वह लक्कड़ गुरु है और जो चुटकी बजाते ही अज्ञान–सागरसे पार कर दें, वह फक्कड़ गुरु है।

संत कबीर ने तो गुरु को गोविन्द से भी ऊँचा बताया है और गुरु को मनुष्य समझने वालों को अंधा कहा है।

सहजो बाई ने कहा है –

गुरु चरनन पर तन मन वारुं।

गुरु न तजूं, हरि को तज डारूं।।

भारतीय परम्परा में गुरु की उपादेयता और अनिवार्यता सहज स्वीकृत तथ्य है क्योंकि पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान वाक्य–ज्ञान तक ही सीमित रह जाता है, किन्तु गुरु–कृपा का महत्त्व अलग ही है। इसका कारण है कि गुरु के सान्निध्य में शंका समाधान होता रहता है तथा साथ ही गुरु अपने आचरण से भी शिक्षार्थी में ''प्रत्यक्ष ज्ञान'' प्रदान करते हैं।

जैसे ज्ञान–विज्ञान के बिना मोक्ष नहीं हो सकता उसी प्रकार सद्गुरु से सम्बन्ध हुए बिना ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती । गुरु इस संसार सागर से पार उतारने वाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौका के समान बताया गया हैं। मनुष्य उस ज्ञान को पाकर भवसागर से पार और कृतकृत्य हो जाता है, फिर उसे नौका और नाविक दोनों की ही अपेक्षा नहीं रहती।[12]

इसलिए हमारे भीतर की योग्यता को यदि मुखरित करना है, प्रकाशित करना है तो गुरु का स्पर्श आवश्यक है।

संदर्भ सूची :

1. योगशास्त्र – 12/16
2. पद्मपुराण, भूमिखंड 85/8
3. महाभारत, शांति पर्व, 326/22
4. वाल्मीकी रामायण – 2/111/2–3
5. शंकराचार्य प्रश्नोत्तरी
6. कुलार्णव तंत्र – 13
7. योगशास्त्र – 2/8
8. पि. तंत्र – 2/2
9. कु.त. 17

10. महाभारत 13 / 147 / 42

11. मनुस्मृति – 2 / 140–141

12. महा.शान्ति. 326 / 22–23